क्या
जिनपूजा करना पाप है ?

वर्धमान तपोनिधि
परम पूज्य
आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय
भुवनभानुसूरीश्वरजी
महाराज साहेब
के शिष्य सहजानंदी परम पूज्य
आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय
धर्मजित्सूरीश्वरजी म.सा.
के शिष्य परम पूज्य
आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय
जयशेखरसूरीश्वरजी म.सा.
के शिष्य विद्वद्वर्य परम पूज्य
आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय
अभयशेखरसूरीश्वरजी म.सा.

-प्रस्तावना-

मूर्ति और मंदिर आर्य संस्कृतिकी धरोहर है, आर्य देशका हर मनुष्य चाहे किसी भी धर्मका हो, कहीं न कहीं मंदिर और मूर्ति से जुडा हुआ है।

और यही श्रध्दा और भक्ति उसको दुःखमें टूटने नहीं देती, सुखमें छकने नहीं देती। जैन धर्ममें भी मूर्तिपूजा श्रावकधर्मका एक महत्वका अंग है।

परंतु बडे दुर्भाग्यकी बात रही है कि पिछले कुछ वर्षोमें मूर्तिपूजाका जोरशोर से विरोध हुआ है।

आर्य संस्कृति को नष्ट करने के षडयंत्रका एक यह भी तरीका है।

'मूर्ति ताकतहीन हैं।'

'पूजा करने में हिंसा है - पूजा करना पाप है।'

'पूजा धर्मशास्त्रोमें नही बताई है।'

ऐसा भ्रामक प्रचार जोरशोरसे किया जा रहा है। लोगो को भरमाया जा रहा है। इसी कारण कई लोगो ने मंदिर और मूर्तिसे अपना नाता तोड दिया है। जो पूजा कर रहे है उनकी श्रध्दा भी डगमगाने लगी है। उनके मनमें भी शंका पैदा होने लगी है।

ऐसी परिस्थितिमें वास्तविकता क्या है, यह समझना जरुरी बन गया है और इसीका यह प्रयास है।

हमारा आशय किसी संप्रदाय का खंडन करने का नहीं है। किन्तु सिध्दांतो का प्रतिपादन और सत्यकी रक्षा करने का है। वास्तविकता समझाने का है। **प.पू.आ.भ. अभयशेखरसूरीश्वरजी म.सा.** बडे ही तार्किक विद्वान है, आपने तर्क आगम और इतिहास के आधार पर मूर्तिपूजा का प्रतिपादन इस लेख में किया है।

वाचकों को सत्य क्या है, इसकी समझ सहजता से प्राप्त हो जायेगी। किन्तु इसलिये जरुरी है कि साम्प्रदायिक कदाग्रह का त्याग करके मध्यममार्गी बुध्दिसे इस लेखका पठन एवं मनन करें।

अंतमें परमात्माकी द्रव्य और भाव पूजा के द्वारा आप स्वयं परमात्मा बनें यही शुभकामना हैं।

- प्रकाशक

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

तस्मै श्री गुरुवे नमः

ऐं नमः

प्रश्न : 'अहिंसा परमो धर्मः' -अहिंसा श्रेष्ठ धर्म है, अतः यह भी स्पष्ट है कि हिंसा सबसे बडा अधर्म -पाप है। परमात्मा की पूजा में भी जल-पुष्प आदि जीवों की हिंसा होती है, तो फिर उसमें भी पाप लगता ही होगा न ?

उत्तर : यदि आप ऐसा नियम बनायेंगे कि 'जहाँ पर भी हिंसा होती है , वह पाप है ' तो आप एक भी धर्मक्रिया नहीं कर सकेंगे। क्योंकि यह पूरा जगत, जीवों से खचाखच भरा हुआ है, और गृहस्थ जयणा (जीवदया) के पालन का कोई विशेष ध्यान रखनेवालें नहीं होते - उल्टा अजयणा से ही प्रवृत्ति करनेकी आदतवालें होते हैं, इसीलिये तो शास्त्रो में गृहस्थको लोहे से भभकते गोले जैसा बताया गया है। जिस तरह लोहे का भभकता गोला जैसे ही जीवों के संपर्क में आता है, उन्हें मारता है; ठीक उसी तरह गृहस्थ जहाँ जाता है वहाँ हिंसा करते ही रहता है। वास्तविकता यह है कि कोई भी धर्मक्रिया हो, चाहे संतोंको वंदन करने जाना हो या व्याख्यान का श्रवण करने जाना हो, सभी में हिंसा तो होती ही है। फिर आपके नियम के अनुसार तो वह सब भी पापक्रिया ही बनेगी और फिर गृहस्थ कोई भी धर्मक्रिया कर ही नहीं सकेगा।

प्रश्न : ऐसी बात नहीं है, शास्त्रोमें ही कहा है -

'आयं वयं तुल्लिज्जा, लाहाकंखिव्व वाणियओ' (उपदेशमाला) अर्थात् लाभ (मुनाफा) की इच्छा रखनेवाला बनिया जैसे आय और खर्चका हिसाब लगाकर, जहाॅ पर खर्च से आय ज्यादा है, ऐसा व्यापार करता है; उसी तरह संतोको वंदनार्थ जाने में या व्याख्यान के श्रवण हेतु आने-जाने में जीवहिंसा यद्यपि होती है,तथापि उस खर्च (पाप) से कर्मोंका नाश - ज्ञानकी प्राप्ति इत्यादी रुप जो आय होती है वह अधिक होने के कारण, फलतः वह पापक्रिया न बनते हुए, धर्मक्रिया ही बनेगी।

उत्तर : तो आपने यह मान ही लिया कि जहाँ पर लाभ ज्यादा है ऐसी धर्मक्रियामें हिंसा होने से ही वह पाप नहीं बन जाती। यह बात परमात्मा की पूजा के लिये भी इतनी ही सही है।

पूजा करने में हिंसा होती है किन्तु परमात्मा के प्रति भक्तिभाव का जो लाभ है, वह कई गुना ज्यादा है। शास्त्रोमें उसके लिये कुँए का उदाहरण दिया है । चलने से थके हुए, प्यासे और मैले शरीरवाले मुसाफिर पानी के लिये जब कुँआ खोदतें है, तो शुरुआतमें तो थकान बढती है, प्यास भी ज्यादा लगती है और पसीना भी होता है। परंतु अंत में जब पानी प्राप्त होता है, तब पानी पीने से और स्नान करने से कुँआ खोदने की थकान, प्यास और मैल ही नहीं, अपितु चलने से हुई थकान आदि भी दूर हो जाते हैं और ताजगी का अनुभव होता है। इसी तरह, परमात्मा की पूजामें भी अजयणा के कारण यदि हिंसा का दोष लगता है तो भी अंतमें प्रभुभक्ति के जो भाव हृदयमें उमडते हैं, उससे वह दोष तो दूर होता ही है, और अनेक गुणोंकी प्राप्ति, पुण्यका बंध भी होता है।

प्रश्न : मान लिया की यदि प्रभुभक्ति के भाव उमडते है, तो हिंसा का दोष दूर हो जायेगा किंतु पत्थर की प्रतिमा की पूजा करने से प्रभुभक्ति के भाव कैसे उत्पन्न होंगे ?

उत्तर : जो प्रतिमा को पत्थर की मानता है, उसे तो भाव उत्पन्न नहीं ही होंगे, यह स्वाभाविक है।तिरंगे ध्वजको कपडे का टुकडा माननेवाले पाकिस्तान या अन्य देश के नागरिकोंमें उसके प्रति कोइ देशभक्तिका भाव नहीं उत्पन्न होगा।

परंतु उसे राष्ट्राध्वज के रुपमें देखनेवाले भारतीय नागरिक को तो देशभक्ति के भाव आते ही हैं, यह हम सबके लिए अनुभव सिध्द है। वह उसको वन्दन करेगा, सम्मान करेगा, उसका अपमान करनेवालो पर आक्रमण करेगा एवं उसके गौरव की रक्षाके लिये प्राणोंका बलिदान भी दे देगा।

उसी तरह प्रतिमा को परमात्मा के रुपमें देखनेवाले श्रध्दा संपन्न श्रावक को भक्ति के भाव उमडते ही है,उसमें जरा भी संदेह नहीं, क्योंकि वे परमात्माके पीछे लाखो - करोडो रुपयों का खर्च करते है, अपने व्यस्त कार्यों में से भी भक्ति के लिये समय निकालते हैं।

परमात्मा के मंदिरसे और भी अनेक शुभ भाव उत्पन्न होते हैं, यह भी हम देख सकते हैं। विवेक छोडकर एक-दूसरे को चिपककर चलनेवाला युगल भी जैसे मंदिर की सीडी चडता है, तुरंत विवेक अपनाकर अलग हो जाता है।

भिखारी भी सिनेमा हॉल के बाहर नहीं बैठते, मंदिर के बाहर भीख माँगने बैठते है,

क्योंकि वे जानते हैं कि मंदिरमें पूजा करनेवाले श्रध्दालुओंको दान के शुभ भाव सरलतासे उत्पन्न हो जाते हैं।

देखिए, तेरहपथी संप्रदाय के आचार्य तुलसी क्या कहते हैं -

'मैं तो हमेशा जाता हूँ मंदिरोमें। अनेक स्थानो पर प्रवचन भी किया है। आज भीनमालमें भी पार्श्वनाथ मंदिरमें गया। स्तुति गाई। बहुत आनंद आया।' - जैन भारती वर्ष ३१, अंक १६-१७, पृष्ठ -२३, दि.२०-७-८३ तेरहपंथ अंक.......

भला, परमात्मा की प्रतिमा शुभ भाव उत्पन्न करने में समर्थ है, इसके लिये इससे बडा सबूत क्या हो सकता है ?

वास्तविकता यह है कि मूर्तिका विरोध करनेवाला कोई भी समाज या कोई भी संस्कृति, एक या दूसरे रुपमें स्वयं मूर्ति का अस्तित्व (स्थापनाको) मानता ही है।

अपने माता -पिता की प्रतिकृती (फोटो) कौन नहीं रखता ?

उनके दर्शन से यदि कृतज्ञताका भाव उत्पन्न होता है, तो परमात्मा की प्रतिमा के दर्शन से भक्ति के भाव क्यों नहीं उत्पन्न होंगे ? सारांश यह है कि प्रतिमा शुभ भाव जाग्रत करने में समर्थ है और इसीलिये उसकी पुजामें लाभ ही लाभ है।

प्रश्न : माता-पिता के प्रति कृतज्ञता - यह तो एक सांसरिक प्रक्रिया है। जबकि पूजा एक धार्मिक क्रिया है। धार्मिक क्रिया में तो हिंसा नहीं करनी चाहिए न ?

उत्तर : ऐसा कहनेवाले आचार्य भगवंतोकी भी समाधि और छत्रीयाँ बनी हुई है। देखिए -

- जैतारण (जि.पाली) में मरुधर केशरी श्री मिश्रीमलजी म.सा. की समाधि है।
- जयपुरमें जयाचार्य की छत्री है, उसमें उनके पगलिये हैं।
- लुधियानामें रुपचंद्रजी म.की समाधि है।
- जगराँवमें फूलचंदजी म.की समाधि है।
- चिंचण में संतबालजी की समाधि है।

क्या यह समाधि / छत्री बनाने में हिंसा नहीं हुई होगी ?

उनके दर्शन-वंदनार्थ हजारो श्रावक जाते है । उसमें हिंसा नहीं होती ?

यदि उस हिंसाके नुकसान से, गुरुभक्ति के भाव का लाभ ज्यादा है ऐसा मानते है, तो जिनमंदिरको भी यही न्याय क्यो नही लगेगा ? यह संत भी अपने गुरुजनों की प्रतिकृती (फोटो) छपवाते हैं- श्रावकोंको वितरीत करते हैं। उसमें हिंसा नहीं होती ? **यदि गुरुदेवकी फोटो के दर्शन से भक्ति के भाव उमडते हैं (यह लाभ ज्यादा है) तो फिर मात्र परमात्माकी प्रतिमा के दर्शन-पूजन में हिंसा के नाम से विरोध करना, यह सांप्रदायिक मूढता नही है ?** आखिर फोटो भी एक प्रकार की प्रतिमा (थ्री डाइमेन्शनल के बदले टु डाइमेन्शनल) ही है ना ?

प्रश्न : **किंतु ऐसा नियम तो नहीं कि पूजा करने से शुभ भाव की उत्पत्ति होगी ही। और यदि नहीं हुई , तो हिंसा के दोष का भी नुकसान ही होगा। इसलिये पूजा नहीं ही करनी चाहिए।**

उत्तर : वैसे तो गुरुदेव की फोटो आदि के दर्शन से भी शुभ भाव उत्पन्न होने का कोई नियम नहीं हैं।

उतना ही नहीं, प्रवचन सुनने से हरकोई को सम्यग्ज्ञान होगा ही, ऐसा भी कोई नियम नहीं। फिर प्रवचन के लिये आने-जाने की हिंसा का दोष भी लगेगा क्या ? ऐसा कोई नहीं मानता।

ज्ञानप्राप्ति की संभावना के लाभ को नजरमें रखते हुए प्रवचन सुनने को धर्मक्रिया ही माना जाता है।

फिर परमात्मा की प्रतिमा के पूजनसे भी अनेक शुभ भावों की उत्पत्ति की संभावना को नजरमें रखते हुए, उसे लाभकारी ही मानना आवश्यक है।

और पूजा करनी ही चहिए, ऐसी श्रध्दा बनी रहती है, नियम बना रहता है, यह भी कोई कम लाभ नही है।

यदि हिंसा के नाम से पूजा का विरोध करेंगे, तो हिंसा तो सभी कार्योंमे है ही, चाहे स्थानक का निर्माण हो, साधर्मी भक्ति हो, संघ का सम्मेलन हो। तो इन सबका विरोध क्यों नहीं किया जाता ?

प्रश्न : **यह सब तो आवश्यक कार्य है, अतः हिंसा भी आवश्यक है। जबकि**

प्रतिमा की पूजा तो अनावश्यक है, क्योंकि मात्र स्तुति-भजनसे भी भक्ति भाव उत्पन्न हो सकते हैं ।

उत्तर : ऐसे तो मात्र किताबों से ज्ञानप्राप्ती हो सकती है। घरमें सामायिक हो सकती है। फिर स्थानक का निर्माण भी अनावश्यक होगा और उसकी हिंसा भी अनावश्यक होगी।

प्रश्न : **नहीं, क्योंकि कई बार किताबों में से जो ज्ञानप्राप्ती नहीं होती, वह साक्षात् प्रवचन श्रवण से होती है। इसलिये स्थानक का निर्माण आवश्यक है।**

उत्तर : तो कई बार मात्र स्तुति - भजन से जो भक्तिभाव उत्पन्न नहीं होते, वह प्रतिमा की विविध प्रकारकी पूजा, संगीत, नृत्य, ताली बजाना, जयजयकार करना, नारा लगाना आदि से उत्पन्न होते है। इसलिये यह सब भी आवश्यक ही है।

और यह भी सोचो कि स्थानक जरुरी है तो तैयार मकान क्यों नहीं लेते ? नया मकान बनाने की हिंसा अनावश्यक है।

प्रश्न : **तैयार मकान कहाँ हो, कैसा हो, धर्मक्रिया के लिये अनुकूल हो या नहीं, यह सब समस्याएँ आती है। अनुकूल जगह पर, अनुकूल लंबाई-चौडाई वाला, पर्याप्त रोशनी और हवा वाला अच्छा मकान हो तो धर्मक्रियामें अनुकूलता बढेगी, ज्यादा लोग लाभ लेंगे। इसलिये नये मकान की हिंसा भी आवश्यक है ।**

उत्तर : मतलब तो यही हुआ कि **जहाॅ लाभ ज्यादा है, वहाँ पर हिंसा होते हुए भी वह धर्म ही है, पाप नहीं है,** ऐसा मानना ही पडेगा।

तो मात्र स्तुति-भजन से जो भाव उत्पन्न होते है, उससे साथ में पुजा करने से ज्यादा भक्ति-भाव उमडते है, इसलिये पुजा भी धर्म ही है, अगर ऐसा नियम नहीं मानेंगे तो फिर साधर्मी भोजोमें भी मात्र दाल और रोटी दो ही चीज बनानी चाहिए। क्योंकि मिठाई जरुरी नहीं होती। यदि साधर्मी की भक्ति के लिये विविध प्रकारका खाना बनाना यह पाप नहीं है, तो परमात्मा की विविध प्रकारकी भक्ति करनें में पाप क्यों माना जा सकता है ?

अब इस बात पर विचार कीजिये, कि एक श्रावक के हाथ-पैर विष्टा (मल-मूत्र) से सने हुए है। अब उन्हें सामायिक करने की इच्छा हुई। उसके लिये उन्होंने हाथ-पैर धोये

और बादमें सामायिक की, इसमें उन्हें पाप लगेगा, या धर्म होगा ?

एक श्रावकको घरमें सामायिक करने की अनुकूलता नहीं है। इसलिये स्कूटर पर बैठकर वह स्थानकमें जाकर सामायिक करते हैं। अब उसमें उन्हें पाप लगेगा कि धर्म होगा? कभी कोई भी संतने व्याख्यान के श्रवण या सामायिक के लिये स्थानकमे स्कूटर/कार से आते हुए श्रावकों को 'आप तो पाप कर रहे हैं, क्योंकि इसमें हिंसा है' ऐसा कहकर रोका है? यदि नही, तो फिर मात्र परमात्माकी पूजा में हिंसा के नाम से विरोध क्यों ?

प्रश्न : यदि शुभ भाव की उत्पत्ति को आगे करकर धर्म में जल- पुष्प आदि की हिंसा मान्य करेंगे तो फिर बकरे का बलि देने की हिंसा भी मान्य करनी पडेगी, क्योकि वहाँ पर भी शुभ भाव की उत्पत्ति कही जा सकती है।

उत्तर : नहीं, यह संभव ही नहीं। वैद्य का दिया हुआ जहर भी औषधी बन सकता है, जीवन बचा सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि 'जहर भी औषधि ही है- कटोरी भरकर पी लो- आरोग्य प्राप्त होगा।'

इतना जहर तो मौत ही लायेगा, फिर आरोग्य प्राप्ति की संभावना ही नहीं रहेगी। इसी तरह जल-पुष्प आदि की हिंसा मान्य करने से बकरे की हिंसा मान्य नही हो सकती। क्योंकी उसकी हिंसा के लिये इतनी क्रूरता लानी पडेगी कि शुभभावों की मौत ही हो जायेगी।

प्रश्न : पर यह समझमें नहीं आया कि जल-फूल की हिंसा में क्रूरता नहीं है और बकरे की हिंसा में क्रूरता है ऐसा आप किस आधार पर की सकते हैं ?

उत्तर : जल-पुष्प आदि एकेन्द्रिय जीव हैं। उनमें अत्यल्प चैतन्य है। वे पीडा को व्यक्त नहीं कर सकते- प्रतिकार भी नहीं करते। इसलिये उनकी हिंसा बिना कोई क्रूरता से हो सकती है।

जबकि बकरा पंचेन्द्रिय है। वह भयभीत होता है, उसे मौत की कल्पनासे गहरा दुःख होता है। भागने के लिये जी-जान की कोशिश करता है। प्रतिकार करता है-चीखता है। खून की धारा बहती है। यह देखने के बाद भी उनकी हिंसा क्रूरता के बिना संभवित ही नहीं।

इसलिये जो क्रूर नही बन सकते ऐसे सज्जन हाथमें छुरी देने पर भी बकरे को मार नहीं सकते।

इस दुनियामें भी देखिए-जल-घास आदि पर ही जीने वाले गाय-बैल इत्यादि प्राणी क्रूर नहीं कहलाते और मात्र उन जीवों की हिंसा के कारण नरकमें नहीं जाते (यदि दूसरा बडा पाप नहो तो) जबकि हिरण-बकरे आदि को मारनेवाले शेर-बाघ आदि प्राणी क्रूर-हिंसक कहलातें हैं और इसी हिंसा के कारण ज्यादातर नरकमें जाते हैं।

मनुष्योमें भी बकरे को मारने वाला जितना क्रूर-कठोर होता है, उतना जल-फूल की हिंसा करनेवाला कतई नहीं होता यह सभी जानते और मानते हैं।

और उल्टा भी देखिये -

पुजा के लिये जल-फुल की हिंसा करनेवालें मूर्तिपूजक श्रावकों से पूजा न करनेवाले श्रावक ज्यादा दयालु होते है, ऐसा भी कोई नियम नहीं। सीधी बात है, जहाँ करोडोका हिसाब नहीं वहाँ पैसे की क्या विसात ? **हर एक श्रावक अपने सांसरिक कार्यों के लिये एकेन्द्रिय जीवों की इतनी हिंसा करता है कि पूजा के लिये होती हुई हिंसा कुछ भी नहीं है। उससे, उसके दया के परिणाम पर कोई असर नहीं होती।** उल्टा पूजा के लिये स्नानादि करने में शास्त्रोक्त जयणा के पालन की इच्छा रखने से प्रयत्न करने से दया के परिणाम जागृत होने की संभावना ज्यादा है।

हाँ, जिनके जीवनमें अपने लिये भी एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा नहीं है, एकेन्द्रिय जीवों की विराधना से भी जिनका हृदय आर्त हो जाता है, ऐसे साधु भगवंतो के लिये, पूजा के कारण की हुई जल-फूल की हिंसा भी दया के परिणाम पर असर करनेवाली होती है, इसलिये उन्हें द्रव्यपूजा का निषेध किया गया है।

तात्पर्य यह है कि निर्दोष जीवनचर्या एवं निरंतर जीवदया के पालन से साधु का हृदय इतना कोमल बन जाता है कि जरा सी भी एकेन्द्रिय जीव की विराधना उनके हृदय को आर्त कर देती है। पूजा के लिये भी वे विराधना करें, तो विराधना का भाव ही उनके मनमें हावी हो जाता है। इसलिये उनके लिये द्रव्यपूजा निषिध्द है। इतना ही नही, जिन्होंने दिनभर के लिये सभी आरंभ समारंभ का त्याग कर दिया है ऐसे पौषध लेने वाले श्रावकों को भी द्रव्यपूजा नहीं करनी है। क्योंकि पौषध में भी द्रव्यपूजा के लिये विराधना करने पर हिंसा का विचार ही मनमें हावी होता है।

प्रश्न : यदि पूजा करने में हिंसा होते हुए भी लाभ ज्यादा है तो फिर साधु भगवंत क्यों पुजा नही करते ?

उत्तर : साधर्मी भक्ति में हिंसा होते हुए भी लाभ ज्यादा है तो मूर्तिपूजामें नहीं माननेवाले संत भी मानतें ही हैं । उसका उपदेश देते है, उनके श्रावक करते है। तो फिर स्वय क्यों नही करते ? इस प्रश्न का उत्तर आप क्या देंगे ? ऐसा प्रश्न अनेक धर्मकार्यो के लिये किया जा सकता है, क्योंकि ऐसे अनेक धर्मकार्य है, जो श्रावक करते हैं परंतु साधु संत नहीं करते।

इसका उत्तर यही देना पडेगा कि श्रावक अपने लिये भोजन बनाने की हिंसा करता ही है अतः उसे साधर्मी भक्ति करने में लाभ ज्यादा है। परंतु साधु भगवंत अपने लिये भोजन नहीं बनाते अतः साधर्मी (श्रावको) के लिये भी उन्हें नही बनाना है।

इसी तरह श्रावक अपने जीवन के लिये जल आदि की हिंसा करता ही है तो उससे पूजा करने लाभ भी ज्यादा है। परंतु साधु अपने लिये जल आदि की हिंसा करते अतः उन्हें परमात्माकी पूजा के लिये भी नहीं करनी हैं।

प्रश्न : श्रावक अपने जीवननिर्वाह के लिये तो हिंसा करता ही है। उसका पाप तो लगता ही है , अब पूजा के लिये भी हिंसा करके ज्यादा पाप क्यों बाँधना ?

उत्तर : यह प्रश्न सभी धर्मक्रिया - गुरुवंदन -प्रवचन श्रवण- स्थानक निर्माण - साधर्मी भोज के लिये किया जा सकता है। उसका क्या जवाब है ?

दूसरी बात यह है कि घर चलाने के लिये जो खर्च होता है, वह खर्च कहा जाता है, किन्तु दुकान चलाने के लिये जो खर्च होता हे, उसे खर्च नहीं कहते, Investment कहते है। क्योंकि उससे कई गुना वापस मिलता है।

इसी तरह जीवननिर्वाह के लिये होती हुई हिंसा पाप कहलाती, परंतु पूजा भक्ति के लिये होती हुई हिंसा पाप नहीं कहलाती, धर्म ही कहलाती है क्योंकि उससे अनेक लाभ होते हैं।

प्रश्न : मान लिया कि प्रतिमा कि पूजा से भक्तिभाव आदि का लाभ होता हो, तो हिंसा में कोई दोष नहीं।

किन्तु पत्थरकी प्रतिमा को परमात्मा कह देने से कोई गुण की प्राप्ती कैसे हो सकती है ? पत्थरकी गाय कभी दूध देती है क्या ?

उत्तर : यदि यह प्रश्न कोई करे कि गाय के नाम का जाप करने से दूध नहीं मिलता तो

परमात्माके नामका जाप करने से गुण की प्राप्ती कैसे होगी, तो क्या जवाब देंगे ? क्या भगवानके नाम का जाप छोड देंगे ?

वास्तविकता यह है कि दूध की प्राप्ति अपने मन पर निर्भर नहीं, इसलिये पत्थर की गाय या नाम का जाप लाभकारी नहीं बनता। जबकि सम्यग्दर्शनादि गुण (या मिथ्यात्वादि दोष) और पुण्य (या पाप) मुख्य रुपसे मन के अधीन है।

जब मन शुभ (अशुभ) भावों से भावित बनता है तब सम्यग्दर्शनादि गुण (मिथ्यात्वादि दोष) और पुण्य (पाप) का लाभ होता है।

जैसे परमात्मा के नाम स्मरण से मन भक्तिभाव से भावित बनता है और गुण-पुण्यका लाभ होता है ;उसी तरह प्रतिमा के दर्शन-वंदन-पूजन से भी मन परमात्मा की साधना-गुण-प्रभाव आदि की स्मृति से भावित बनता है। तो उससे गुण-पुण्य की प्राप्ति क्यों नहीं हो सकती ?

श्री दशवैकालिक सूत्रमें स्त्रीका चित्र देखने का भी निषेध किया है क्यों कि स्त्रीके चित्र का दर्शन भी मन को राग-विकार-वासना से वासित करके नुकसानकारी बनाता है।

तो परमात्माकी प्रतिमा भी मन को वैराग्य -क्षमा-उपशमभाव के भावों से वासित करके लाभकारी बनाती ही है।

टेलिविझन के द्रश्यों की बूरी असर से सब परिचित है।

माता-पिता के फोटो के दर्शन से कृतज्ञता का भाव उत्पन्न होना सभी जानते है। गुरुदेव के फोटो के दर्शनसे भक्तिभाव की उत्पत्ति सब मानते हैं। तो परमात्मा की प्रतिमा के दर्शन से भक्तिभावों की उत्पत्ति क्यों नहीं होगी ?

वास्तवमें तो रोजाना भावपूर्ण भक्ति के साथ पूजा करनेवाले श्रावकों को ही उनका अनुभव पूछ लेना चाहिए। और यदि वे यह कहते हैं कि उनके भावों की सुंदरतम वृध्दि होती है तो स्वयं भी पूजा शुरु कर देनी चाहिए।

जो समय हम परमात्माकी स्तुति-पूजामें व्यतीत करते है, वही समय का श्रेष्ठ उपयोग है।

जो धन हम परमात्माके चरणोमें समर्पित करतें है, वही धन का श्रेष्ठ सदुपयोग है।

प्रश्न : प्रतिमामें प्रभुजीके प्राणोंकी प्रतिष्ठा करते हैं, तो क्या भगवानको मोक्षमें से नीचे ले आते है ?

उत्तर : प्रतिमामें प्रतिष्ठा करने का अर्थ है कि प्रतिमाकों शास्त्रोक्त विधिविधान मंत्रोच्चार के द्वारा प्राणवान बनाना। प्राणवान् बनाना याने क्या ?

दवाईयों के उपर Expiry Date होती है। उसका अर्थ यह है कि पहले वह जिवित थी और बादमें मर जायेगी। (Expire का अर्थ मरना-नष्ट होना है।)

अब दवाई में जीवित होना क्या और मरना क्या ? विचार करने पर यह समझ सकतें हैं कि अपना कार्य करने में समर्थ होना यही दवाईके जीवंत होने का अर्थ है। और वह सामर्थ्य नष्ट होना यही उसकी मृत्यु है। तो मतलब यह हुआ कि जीवंतता और मृत्यु का अर्थ हमेशा प्राणोंसे संबंधित नहीं है। बिजली का तार भी जिवंत कहलाता है- जब बिजली का प्रवाह उसमें से बह रहा हो।

ऐसा ही प्रतिमाके लिये है। उसको प्राणवान बनाने के अर्थ है कि प्रत्यक्ष परमात्माके दर्शन-पूजनादि से जो फल मिलता है, वही फल देने का सामर्थ्य उसमें उत्पन्न करना। प्रतिष्ठा होने से अब यह साक्षात् परमात्मा है, ऐसे परिणाम दर्शन-पूजा करनेवाले के मनमें उत्पन्न होते है। परिणाम ही पूजनका फल देनेमें कारण बनता है।

इसी तरह प्रतिष्ठा में परमात्माको मोक्षमें से लाने की कोई बात नहीं है। अपितु स्थापित करने की बात है।

इसके विस्तृत विवरण के लिये देखिए षोडशक ग्रंथ - हरिभद्रसूरि म.सा.

प्रश्न : यदि परमात्माकी भक्ति करनी ही है तो परमात्मा के चरणोमें धन रख दो। जल-फूल की क्या जरुरत है ?

उत्तर : घर पर भोजन के लिये आमंत्रित मेहमान की थाली में १०० रु. की नोट रख देना यह स्वागत है, या अनेक प्रकार के पकवान आदि भोजन बनाकर देना स्वागत है ?

भक्ति विविध प्रकारके द्रव्यों से बढती है।

साधु संत गोचरी के लिये पधारें हो, तब भी जितनी ज्यादा चीज सूझती हो, जितनी ज्यादा चीज वेरते है, उतना भक्तिभाव बढता है , आनंद बढता है, यह अनुभव सभी को है।

उसी तरह परमात्माकी जल-चंदन-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-फल-नृत्य आदि विविध

प्रकारकी पूजा से भक्ति के भाव बढते जाते हैं।

प्रश्न : मेहमान या साधु भगवंत को द्रव्यों की आवश्यकता है, परमात्मा तो वीतराग है। उन्हें द्रव्यों की आवश्यकता नहीं, फिर द्रव्यपूजा से क्या लाभ होगा ?

उत्तर : वैसे तो भगवान को अपने स्तुति-गुणगान भजन आदि की भी कोई आवश्यकता नहीं है, तो भी हम क्यों करतें हैं ? इस पर विचार कीजिए।

स्तुति हो-भजन हो-या द्रव्यपूजा हो - सभी का उद्देश्य परमात्मामें अपने मनको तल्लीन करने का है। हर प्रकारकी पूजा परमात्मामें मन को तल्लीन करने में सहायक बनती ही है और इसलिये ही अनेक शुभ फलों की जनक भी है ही।

प्रश्न : परंतु एकाग्रता - तल्लीनता तो मात्र स्तुति- भजन से भी आ सकती है। उसके लिये जल-फूल आदि की हिंसा करने की क्या जरुरत है ?

उत्तर : यूँ तो यह भी कहा जा सकता है कि तल्लीनता मात्र नामस्मरण से आ सकती है, फिर स्तुति- भजन की क्या जरुरत है ? उसमें भी कभी क्षमा गुणकी, कभी वितरागता की, कभी साधना की। ऐसे तरह-तरह की स्तुतियों की क्या जरुरत है ?

वास्तविकता यह है कि हमारा मन विविधता के प्रति आकर्षित होता है। इसलिये ही पूजा में विविधता बताई गयी है। जितने अलग-अलग तरीकों से मन प्रभुमें मग्न बनें - तल्लीन रहे- उन सभी तरीकों से उसे मग्न बनाना यही ज्ञानियोंका अभिप्राय -अलग अलग प्रकारकी पूजा के पीछे है।

विविधता के कारण ही मन परमात्मामें लंबे काल तक तल्लीन रह सकता है, यह हमारा अनुभव भी है।

नहीं तो वह भी प्रश्न किया जा सकता है कि मात्र सामायिक से साधना हो सकती है। दान-तप आदि धर्मों की क्या जरुरत ? गुरुवंदन-प्रवचन श्रवण आदि के लिये हिंसा करने की क्या जरुरत है ?

प्रश्न : सभी धर्मों का अपना अपना महत्व है, अपना अपना विशिष्ट फल है। इसलिये उसमें हिंसा होती हो तो भी अंतमें वह लाभकारी है ही।

उत्तर : ठीक उसी तरह हर एक द्रव्यूजा का अपना विशिष्ट फल है ही।

एक भक्तने परमात्माके नामका जाप शुरु किया। ५-७ मिनट मन उसमें एकाग्र रहा। बादमें जाप चालू होते हुए भी मन भटकने लगा। उसी वक्त यदि उसे अलग प्रकारकी भक्तिमें जोड दिया जाये- जैसे कि जलपूजा -तो वापस मन परमात्मामें स्थिर हो जायेगा। अब थोडी देरमें वापस मन भटकने लगा तो वापस दूसरे प्रकारकी पूजा-चंदनपूजामें जोड देने पर स्थिर हो जायेगा।

इस तरह लंबे काल तक मनको प्रभुमें तल्लीन रखने के लिये तरह-तरह की पूजा, तरह-तरह की साधना आवश्यक है।

प्रश्न : **फिर भी, तरह तरह की पूजा से सभीका चित्त एकाग्र होगा ही, ऐसा कोई नियम नहीं है।**

उत्तर : वैसे तो सामायिक करने से भी समताकी प्राप्ति सभी को होगी ऐसा कोई नियम नहीं है। फिर भी सामायिक छोडने कि बात तो कोई नहीं करता। तो पूजा भी छोडनी नहीं ही चाहिए।

प्रश्न : **मान लिया की पुष्पपूजा आदि से शुभ भावों की उत्पत्ति होने के कारण वह लाभ करनेवाली है। किन्तु उसके लिये दो-चार फूलों से पूजा पर्याप्त है। सैंकडो हजारो फूलो की हिंसा की क्या जरुरत है ? वैसे भी धर्म में हिंसा होती हो तो भी जयणा का पालन तो आवश्यक बताया ही है न ? और जयणा का अर्थ यही है कि कम से कम हिंसा करना।**

उत्तर : साधर्मी की भक्ति रोटी-दाल से हो सकती है फिर मिठाई क्यों बनातें है ? एक मिठाई से हो सकती है फिर दो-तीन मिठाई क्यों बनातें हैं ? जयणा तो साधर्मी भक्तिमें भी होनी चाहिए न ?

वास्तविकता यह है कि **जहाँ पर शुभ भावों की उत्पत्ति का लाभ अधिक है, वह हिंसा दोषरुप नहीं है**। यदि दो-चार फूलों से भक्तिभाव उमडते है, तो सैकडो-हजारो फूलो से और अधिक शुभ भाव उत्पन्न होंगे तो वह हिंसा दोषरुप नहीं ही बनेगी।

नहीं तो फिर एक संतको वंदन करने से गुरुवंदन हो गया। अब दुसरे संतको वंदन नहीं करना चाहिए क्योंकि उसमें गमनागमनमें हिंसा होनेवाली है, ऐसा भी मानना पडेगा।

सामग्री कम करनी यह जयणा नहीं, किन्तु विवेक रखना यह जयणा है। साधर्मी

भक्तिमें जयणा का पालन भक्ति के द्रव्यों को कम करने से नहीं होता बल्कि उसमें रात को रसोई न करने से, बाजार की चीजें न लाने से, जमीकंद आदि अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करने से होता है। उसी तरह परमात्माकी भक्तिमें जयणा का पालन फूलों की संख्या कम करने से नहीं होता अपितु फूलों को न कुचलने से, सूई न लगाने से होता है।

फूलों की संख्या कम करना, यह जयणा नहीं, अविवेक है, कृपणता है, जैसे साधर्मी भक्तिमें द्रव्यों की संख्या कम करना यह कृपणता है।

प्रश्न : पर्वतिथि के दिनों में आप हरी सब्जी-फल आदिका त्याग करने की प्रेरणा करतें हैं। फिर पूजा में फल-फूल आदिका उपयोग भी उन दिनों में नहीं करना चाहिए न ?

उत्तर : पर्वतिथिके दिनों में सांसारिक कार्यों के लिये बाहर न आने जाने की प्रेरणा भी की जाती है। तो फिर व्याख्यान के श्रवण हेतु भी नहीं आना-जाना चाहिए। ऐसा प्रश्न कोई करें तो क्या जवाब देंगे ?

स्वयं उपवास करनेवाला भी साधु-साध्वी भगवंतो को गोचरी वेराता ही है ना ?

सांसरिक कार्यों के लिये हिंसाका निषेध करना यह अलग बात है और धर्मकार्य, जहाँ शुभ भावों का लाभ बहुत ज्यादा है, उसके लिये अल्प हिंसा करना अलग बात है। और पर्वतिथियोंमें हरी सब्जी / फल आदि का त्याग इसलिये भी करना है कि वह आसक्ति/ राग का कारण है। परमात्मा की भक्तिमें उसका समर्पण करने से तो उल्टा त्याग होनेवाला है, राग नहीं। फिर उसका निषेध क्यों करें ?

प्रश्न : माना की पूजामें भी धर्म है, लाभ है, किन्तु उसमें हिंसा का अल्प दोष तो है ही। जबकि सामायिक में मात्र लाभ है, दोष बिलकुल नहीं। फिर सामायिक ही करनी चाहिए न ?

उत्तर : तो फिर सामायिक के सिवा और कोई भी धर्म नहीं करना चाहिए। चाहे प्रवचन का श्रवण हो, स्थानक का निर्माण हो या गुरुवंदन हो। क्योंकि सभी में अल्प हिंसा का दोष तो है ही। लेकिन ऐसा तो कोई नहीं मानता। फिर मात्र पूजा के लिये ही निषेध क्यों ?

हाँ शक्ति हो तो जीवनभर की सामायिक ही करनी चाहिए। दीक्षा ले लेनी चाहिए।

प्रश्न : श्रध्दासंपन्न श्रावकों को जिनपूजा से लाभ होता है ऐसा मान लिया। किन्तु जिन्हे प्रतिमा और पूजा में श्रध्दा ही नहीं होती, उन्हे तो शुभ भाव नहीं आने से लाभ होनेवाला ही नहीं। तो उनके लिये तो पूजा का निषेध ही करना पडेगा क्योंकि उन्हें मात्र हिंसा का दोष ही लगेगा।

उत्तरः यदि कोई नास्तिक मनुष्य ऐसा कहे कि 'मुझे गुरुदेव पर श्रध्दा नहीं। इसलिये वंदन करने में शुभ भाव नहीं आते। इसलिये मुझे तो आने-जाने की हिंसा का दोष ही लगेगा। इसलिये में वंदन करने नही जाऊंगा।' तो आप क्या कहेंगे ?

यही न,कि 'भैया आप श्रध्दा रखों, वंदन करने चलो, श्रध्दा स्वयं उत्पन्न होगी, बढती जायेगी।'

इसी तरह हम भी यही उपदेश करेंगे कि प्रभु की प्रतिमा और पूजा में श्रध्दा रखिए, पूजा किजिए, आपकी आत्माका कल्याण होकर ही रहेगा।

प्रश्न : यदि मूर्तिपूजा से आत्माका कल्याण ही होता है, तो शास्त्रोंमें - आगमों में मूर्तिपूजा का विधान क्यों नहीं है ?

उत्तर : यह पूर्णयता गलत मान्यता है कि आगमो में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है, देखिए-

१. श्री ठाणांग सूत्र के चौथे स्थानमें नंदिश्वर द्वीप पर रहे हुए जिनमंदिरों का वर्णन है।

२. श्री समवायांग सूत्र के सत्रहवें समवायमें जंघाचरण और विद्याचरण मुनिओं द्वारा नंदिश्वर द्विप के -जिनमंदिरो की यात्रा का वर्णन है।

३. श्री भगवती सूत्र के तीसरे शतक के पहले उद्‌देश्यमें चमरेन्द्र के अधिकारमें जिनप्रतिमा के शरण की बात है।

४. श्री उपासकदशांग में आनंद श्रावक के अधिकारमें जिनमुर्तिका उल्लेख है।

५. श्री रायप्पसेणिय सूत्र में सुर्याभदेवने की हुई जिनप्रतिमा की पूजा का वर्णन है।

६. श्री ज्ञाताधर्मकथांग में द्रौपदीद्वारा की गयी जिनपूजा का वर्णन है।

७. श्री जीवाभिगम सूत्रमें विजयदेव की जिनप्रतिमा पूजा का वर्णन है।

यह तो कुछ नाम बतायें। इसके अलावा सैंकडो शास्त्रोंमें मूर्तिपूजा की बात है ही।

प्रश्न : यदि ऐसा है तो फिर 'मूर्तिपूजा कोई आगमों में नहीं है ' ऐसा क्यों कहा जाता है ?

उत्तर : यह तो ऐसा कहनेवालों से ही पूछना चाहिए।

वास्तविकता यह है कि हजारों सालों से ४५ आगम और अन्य शास्त्र चले आ रहें है। लेकिन अपनी मतिसे ही निर्णय कई लोगोंने कर लिया कि मूर्तिपूजा पाप है। और जो आगमोंमे मूर्तिपूजा स्पष्ट रुपसे बताई है उन्हें अमान्य करके बाकीके आगम ही माने। (वास्तवमें तो उन आगमोमें भी मूर्तिपूजा मान्य है ऐसा हम बता चुके है।) और अन्य शास्त्रोमें तो सर्वत्र मूर्तिपूजा की बात की है। इसलिये उन्हें सर्वथा अमान्य कर दिया।

आश्चर्य यह है कि उन आगमों के अर्थ करने के लिये भी सहारा तो स्वयं जिन्हें अमान्य मानते थे उन्हीं शास्त्रों निर्युक्ति-भाष्य-वृत्ति आदि का लिया। क्योंकि उसके बिना चारा ही नहीं था। उन शास्त्रोंके बिना मूल आगमोंका अर्थ करना असंभव था और है। आज भी आगमों का अनुवाद उन शास्त्रों के सहारे ही होता है चाहे कोई भी संत करे।

स्वयं को मान्य आगमोंमें जहाँ पर मूर्तिपूजा की बात थी, उन शास्त्रपाठों के साथ खिलवाड करके बदल दिया। उल्टे-पुल्टे अर्थ किये। देखिए, संत श्री विजयमुनीशास्त्री अमरभारती (दिसम्बर १९७८,पृ.१४) में लिखते हैं- **'पूज्यश्री घासीलालजी म. ने अनेक आगमों के पाठों में परिवर्तन किया है,तथा अनेक स्थलों पर नये पाठ बनाकर जोड दिये हैं। इसी प्रकार पुष्फभिक्षुजी म. ने अपने द्वारा संपादित सुत्तागमे में अनेक स्थलों से पाठ निकालकर नये पाठ जोड दिये हैं। बहुत पहले गणि उदयचन्द्रजी महाराज पंजाबी के शिष्य रत्नमुनिजीने भी दशवैकालिक आदिमें सांप्रदायिक अभिनिवेश के कारण पाठ बदले हैं।'**

कोई भी मध्यस्थ व्यक्ति, जो सत्य का पक्षपाती है, आत्महित चाहता है, वह इन संतोंको पूछें कि '४०० या ज्यादा वर्ष पुरानी हस्तलिखित प्रतो में वह आगमका पाठ बतायें' तो वास्तविकता प्रकाशमें आ जायेगी।

अब आगमों के अर्थों के साथ कैसा खिलवाड हुआ है , यह देखिए । श्री रायप्पसेणिय सूत्रमें (जो मूल आगमोंमें है) 'देवलोकमें जिनेश्वर भगवान की अवगाहना प्रमाण १०८ जिनप्रतिमा, पद्मासनमें, ऋषभ, वर्धमान, चन्द्रानन और वारिषेण जिनकी है' ऐसा मूल

आगममें कहा है, अब इसका सीधा अर्थ करने पर तो मूर्ति माननी पडेगी। इसलिये क्या किया ? 'जिन' का अर्थ कर दिया अवधिजिन और वह भी मिथ्यात्वी, कामदेव। अब आप सोचिये।

१. जैन शास्त्रोमें सर्वत्र 'जिन' शब्द का प्रयोग सामान्यसे अरिहंत के लिये ही होता है-यदि कोई विशेष शब्द नहीं जोडा गया हो। अन्यथा तो जैन-जिनका अनुयायी कामदेवका अनुयायी ऐसा अर्थ भी हो सकता है।

२. कामदेवकी प्रतिमा पद्मासनमें कभी नहीं होती।

३. कामदेवके चार नाम ऋषभ,वर्धमान आदि कहीं पर भी प्रसिध्द नहीं है।

४. अन्य मूल आगम-जीवाभिगम सूत्रमें इन प्रतिमाओंकी इन्द्र आदि देव नमुत्थुणं सूत्र से स्तवना करते हैं ऐसा बताया है। और नमुत्थुणं से अरिहंत के सिवा किसी अन्यकी स्तवना कहीं पर भी प्रसिध्द नहीं है।

५. इन्द्र समकिती होते हैं- वह कामदेवका स्तवन करे यह कैसे संभवित है ?

६. कामदेवकी मूर्ति का जिनागममें विस्तार से वर्णन होना भी संभव नहीं है।

यह स्पष्ट है कि जिनप्रतिमा का अर्थ अरिहंत की प्रतिमा ही है, परंतु उसे मानने में तो बडी आपत्ति आ जाती है इसलिये ऐसा उल्टा-पुल्टा अर्थ कर दिया है।

जिन्हें अपनी बातको सिध्द करने हेतु आगमों से खिलवाड करना भी मान्य हो, वह सत्यके पक्षमें है या असत्यके यह निर्णय आप ही कर लिजीए। परमात्मा महावीरदेव के जीव को मरीचि के भवमें की हुई एक वाक्यकी उत्सूत्र प्ररुपणाके कारण एक कोटाकोटी सागरोपम(असंख्य वर्ष) संसारमें भटकना पडा यह कभी नहीं भूलना चाहिए।

प्रश्न : ''मूर्तिपूजा पाप है'' ऐसा निर्णय अपनी मति से लिया, ऐसा कहने के लिये आपके पास क्या सबूत है ?

उत्तर : शास्त्रोमें कहीं पर भी 'परमात्माकी पूजा या मंदिर नहीं बनाना चाहिए-पूजा नहीं करनी चाहिए-उसमें पाप है, ऐसा कोई भी वाक्य नहीं है।'मूर्तिपूजा को पाप कहनेवालों से आमंत्रण है कि ऐसा शास्त्रवचन हो तो घोषित करें।

प्रश्न : हिंसा का निषेध शास्त्रमें है ही और पूजामें हिंसा होती ही है। तो उसका निषेध हो गया न ?

उत्तर : वैसे तो स्थानक बनाना, साधर्मी भक्ति करना,प्रवचन के लिये जाना-सभी में हिंसा से लाभ ज्यादा होने के कारण उसका निषेध नहीं है, तो मूर्ति-मंदिर और पूजामें भी लाभ ज्यादा है यह तो हम पहले ही सिध्द कर चुके है, फिर उसका निषेध कैसे होगा ? और यदि मूर्ति पूजा में पाप होता तो जैन शासनमें पापके प्रायश्चित्त के लिये जो विस्तृत शास्त्र-छेदग्रन्थ है, उसमें परमात्मा की मूर्ति बनानेका, मंदिर बनानेका, पूजा करनेका प्रायश्चित्त नहीं बताया है, क्योंकि धर्मका कोई प्रायश्चित्त होता ही नहीं।

करुणा से भीगे हृदय से हम यह कहना चाहतें हैं कि 'यदि आप मूर्तिपूजा नहीं करना चाहते तो भी, मूर्तिपूजामें पाप है ऐसा उत्सूत्र भाषण करके, आपकी आत्माका अनंत संसार बढाने का जबरदस्त पाप कभी न करें।'

प्रश्न : यह कहा जाता है कि परमात्मा के समयमें मूर्तिपूजा नहीं थी परंतु बादमें शास्त्रोंमें जोड दी गयी।

उत्तर : यदि ऐसा ही होता तो मूल आगमों में मूर्तिपूजा का पाठ कैसे होते ?

देवलोककी प्रतिमाएँ शाश्वत है। तो परमात्मा के समयमें भी मूर्ति और पूजा थी यह स्पष्ट है।

आजसे करीब ८६००० वर्ष पूर्व द्रौपदीने जिनप्रतिमा की पूजा की थी ऐसा पाठ ज्ञाताधर्मकथा में है।

परमात्मा महावीर देव के समयमें ही हुए गौतम बुध्द, राजगृही नगरीमें श्री सुपार्श्वनाथ भगवान के तीर्थमें ठहरे थे ऐसा बौध्दग्रन्थ महावग्ग १-२२-२३ में बताया है।

कल्पसूत्रमें सिध्दार्थ राजाने जिनपूजा की थी ऐसा पाठ है।

कलिंग में हाथी गुफामें महाराजा खारवेल के शिलालेखमें जिनप्रतिमाका स्पष्ट उल्लेख है। जिसका समय वीर प्रभुके बाद दूसरी सदी का है। वह मूर्ति नंदराजा मगध देशमें ले गये थे और महाराजा खारवेलने पुनः कलिंगमें प्रतिष्ठा करवाई थी। इससे उस समयमें भी मंदिर -मूर्ति-पूजा थे, यह स्पष्ट है। यदि मूर्तिपूजा शास्त्रविरुध्द होती तो उस वक्त विद्यमान १४ पूर्वधर आदि आचार्य भगवंतने उसका जबरदस्त विरोध किया होता।

उसके बाद भी हजारों विद्वान् आचार्य भगवंत हुएँ है, जिनके शास्त्रवचनोंके आधार पर ही आज शासन टिका हुआ है।

उनमें से कभी किसीने मंदिर-मूर्ति-पूजाका विरोध नहीं किया है।

प्रश्न : यह संभावित है कि पूर्वाचार्यो ने मूर्तिपूजा का कदाग्रह पकड लिया हो। इसलिये उसका विरोध नहीं किया हो।

उत्तर : दो हजार साल तक सभी आचार्य भगवंत कदाग्रही थे उनमें कोई भी पाप से डरता नहीं था और ४००-५०० वर्ष पूर्व हुए संत ही निष्पक्ष थे पाप से डरते थे ऐसा मानना यह बहुत बडी मूढता-सांप्रदायिक कदाग्रह के सिवा क्या हो सकता है ?

यह सब जानते और मानतें हैं कि जिनशासनमें मूर्तिपूजा का विरोध पिछले ५०० सालों में ही हुआ है। इसलिये ही उन लोगों के पास न कोई प्राचीन शास्त्र है, न कोई इतिहास है।

इस पूर्ण चर्चा का सारांश यह है कि

- **जिनमंदिर-मूर्ति और शाश्वत है ।**
- **आगमों में मूर्तिपूजाका विधान है ही और निषेध कही नहीं है।**
- **मूर्तिपूजामें अनेक शुभ भावोंकी उत्पत्ति,सम्यग्‌दर्शनादि गुणोंका लाभ और पुण्यबंध के लाभ के सामने हिंसा का दोष अत्यंत अल्प और नगण्य है।**
- **हिंसा के नाम पर पूजा का विरोध करनेवाले भी, उससे अधिक हिंसा अन्य धर्मके लिये करते ही हैं। अतः मूर्तिपूजाका विरोध कदाग्रह प्रेरित है।** यह स्पष्ट है।

इसलिये हर श्रावकका यह कर्तव्य है कि मूर्तिपूजा में श्रध्दा रखना और भावपूर्ण भक्तिके साथ पूजा करना।'मूर्तिपूजा पाप है ' ऐसे उत्सूत्र वचनोका प्रतिकार करना।

इस विषयकी अधिक जानकारी के लिये देखिए

१. 'प्रतिमा पूजन' -पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.

२. ' मूर्तिपूजाका प्राचीन इतिहास'-पू.मु.श्री ज्ञानसुंदरजी म.सा.

इस पुस्किामें दिये गये शास्त्रपाठों की एवं शिलालेखों की जानकारी भी इन पुस्तकोमें दी हुई है।

जिनाज्ञा के विरुध्द कुछ भी लिखा गया हो, तो मिच्छामि दुक्कडं।

इतिहास क्या कहता है ?

- देवलोक तथा नंदिश्वर द्वीप आदि में शाश्वत जिन प्रतिमा है।
- असंख्य वर्ष पुरानी श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ, श्री स्थंभन पार्श्वनाथ भगवान (खंभात), श्री नेमनाथ भगवान(गिरनार) आदि की जिन प्रतिमाएँ मौजूद है।
- सवा दो हजार वर्ष पहले हुये संप्रति महाराजाकी बनाई हुई सैंकडो जिन प्रतिमा जगह-जगह पर मौजूद है।
- २३०० वर्ष पूर्व के महाराजा खारवेलके शिलालेख में जिनप्रतिमा का उल्लेख है।
- ८६००० वर्ष पूर्व द्रौपदीने जिनप्रतिमा की पूजा की है।
- परमात्मा महावीरदेव के पिताश्री सिध्दार्थराजा ने जिनपूजा की है।
- मूर्तिपूजा का विरोध पिछले ५०० वर्षो में ही हुआ है।
- ५०० वर्ष से पुराना कोई भी शास्त्र या कोई भी इतिहास मूर्तिपूजाके विरोधियों के पास नहीं है।
- बौध्द धर्मग्रंथोमें गौतम बुध्द के समय की जिनप्रतिमा का उल्लेख है।
- अमूर्तिपूजक कई संत सत्य का साक्षात्कार होने पर मूर्तिपूजा का स्वीकार करके संवेगी साधु बने हैं।

मूर्तिपूजा न मानने के लिये

- सूत्रों को उडाया। (आगमोंको अमान्य किया)
- सूत्रों के पाठ बदल दिये।
- इतिहास को विकृत किया।
- सूत्रों के अर्थ उल्टे किये।
- पूर्वाचार्यों को अमान्य किया।

क्या यह कदाग्रह नहीं है ?

जिनपूजा का निषेध करने के कारण कई श्रावक -अन्य देवों के मंदिरोमें जाने लगे हैं। (क्योंकि आर्य देशके हर एक मनुष्यके हृदय में अद्रश्य परिबलों के प्रति श्रध्दा और भक्ति होते ही हैं।) इस मिथ्यात्व का जिम्मेदार कौन ?

जरा सोचिए

यदि गुरुदेव की फोटोका दर्शन धर्मक्रिया है, तो परमात्मा की प्रतिमाका दर्शन पाप कैसे माना जा सकता है ?

यदि गुरुदेवके प्रवेश का जुलुस निकालना यह धर्म है, तो परमात्मा की रथयात्रा निकालना पाप क्यो है ?

यदि गुरुदेवके दर्शन / वन्दन के लिये दूर तक जाना धर्म है, तो तीर्थयात्रा के लिये दूर जाना पाप क्यो है ?

यदि स्थानक बनाना धर्म है, तो मंदिर बनाना पाप क्यो है

यदि स्त्री का चित्र राग उत्पन्न करता है, तो परमात्मा की प्रतिमा वैराग्य क्यों उत्पन्न नहीं कर सकती ?

यदि परमात्मा का नामस्मरण सम्यग्दर्शन प्राप्त करा सकता है, तो परमात्माकी पूजा क्यों नही करा सकती ?

यदि साधर्मिक की अनेक द्रव्यों से भक्ति करना धर्म है, तो परमात्माकी अनेक प्रकारकी द्रव्यपूजा धर्म क्यो नही ?

यदि हिंसा के नाम पर पूजा का निषेध किया जाता है, तो जहाँ पर हिंसा है ही, ऐसे स्थानकका निर्माण, साधर्मी भक्ति आदि सभी का निषेध करना पडेगा ।

सौजन्य

- श्री. संभवनाथ जैन युवक मंडळ, करचेलीया
- श्री पालीबेन हस्तीमलजी शाह (मोकलसरवाला)ह.भावेश ईश्वरभाई शाह
- श्री.भरतभाई कांतिलाल दोशी, जतन अेपार्ट, मलाड
- श्रीमती मंजुलाबेन धनसुखलाल शाह, नवसारी, ह. सुनिलभाई (सी.ए)
- श्रीमती कमळाबेन रिखबचंद महेता परिवार, ह. चंपकभाई नवसारी
- श्री.श्रेयांस विजयभाई जैन, (जयपूरवाला) हाल नवसारी
- श्री. जैन युवक मंडळ, पालघर (वे.) जि.थाना
- श्री.आशिष किशोरभाई अमृतलाल, कठोर

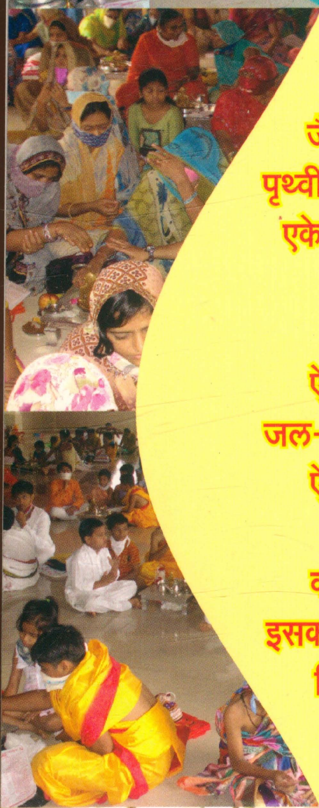

जैन दर्शन की अहिंसा सर्वश्रेष्ठ है ।
पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा और वनस्पति रुप
एकेन्द्रिय जीवों की रक्षा का उपदेश मात्र
जैन धर्म करता है ।

ऐसे अहिंसा के पूजारी जैन श्रावक,
जल-फूल आदि की हिंसा जिसमें होती है,
ऐसी जिनपूजा कैसे कर सकते हैं ?

क्या यह प्रश्न आपके दिमागमें हैं ?
इसका तर्क और न्यायपूर्ण उत्तर समझने के
लिये अवश्य पढिये यह पुस्तिका ।